International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

1900 से 1950 तक के काल में स्त्री की स्थिति का अध्ययन

अन्नु
शोधार्थी– पी.एच.डी. (हिन्दी–विभाग)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

प्राचीनकाल में स्त्री की स्थिति, खासकर वैदिक युग में आज के बजाय बहुत अच्छी थी। इसमें मैत्रेयी, गार्गी जैसी विदुषियाँ थी, जिन्होनें अपनी विद्वता सिद्ध की। रामायण में स्त्री की आदर्शवादी और मर्यादा से परिपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। महाभारत में स्त्री की स्थिति में गिरावट आई। नारी मात्र मनोरंजन की वस्तु बनकर रह गई। ''ज्यों–ज्यों पुरूष सभ्य होता चला गया परिवार व समाज की प्रमुख शक्ति बनता गया, त्यों–त्यों नारी गौण होकर उस पर आश्रित होती गई और इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह न केवल स्वतंत्र रही न समान और न शेष रही उसकी अस्मिता, वह पुरूष की मुट्ठी में बंद कर रह गई।''[1]

इसके बाद नवजागरण की लहरों की गर्माहट ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था, वह स्त्री से संबंधित संकुचित दृष्टिकोण में कुछ अन्तर आया। बदलाव की बयार की ये गर्माहट परम्परागत संस्कारों के सामने क्षीण सी पड़ गई। वर्जीनिया बुल्फ, सीमोन द बोवआर, जर्मेन ग्रीयर, अज्ञात हिन्दु महिला, पंडिता रमाबाई आदि ऐसी शाख्सयत रहें जिन्होनें नारी में चेतना का समावेश किया, उसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। ''उस समय का पुरूष वर्ग नारी शिक्षा को लेकर छदम् मर्यादा की खाल ओढे और नारियों को लज्जा और चरित्र सुरक्षा के नाम पर शिक्षा के रास्ते पर पैर उठाने नहीं देता था। बंग महिला भी इसी सामाजिक प्रतिगामिकता का शिकार हुई थी। इसलिए आगे

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

चलकर उन्होनें पुरूष वर्ग को ललकारते हुए अशिक्षा और जड़ता से आक्रांत नारियों को जगाने की पुरजोर कोशिश की।''[2]

इसके उपरान्त भारतेन्दु युग में कवियों में रीतिकाल के प्रभाव से यद्यपि श्रृंगार भावना अभी भी विद्यमान थी, लकिन इन कवियों ने नारी को शारीरिक मांसलता एंव अश्लीलता से बचाया है। प0 प्रताप नारायण मिश्र ने 'पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ' की कैसी अच्छी पूर्ति की है:–

''बनि बैठि है मान की मूरति सी
मुख खोलत बाले न 'नाहि' न हा
यह ब्यारि तबै बदलेगी कछु
पपीहा जब पूछि है, पीव कहाँ''[3]

इसके बाद 1900 के बाद का समय आता है। भारतीय नवजागरण की वैचारिक पृष्ठभूमि को धारण किए राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन शुरू हुआ। इसमें जहाँ एक ओर देश की आजादी के जिए पुरजोर कोशिश हुई तो दुसरी ओर स्त्री वर्ग जो अंग्रेजों की गुलामी के साथ– साथ निज पारम्परिक गुलामी को ढों रहा था। उसमें भी जागरण की लालसा जागी। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का पुरूष प्रधान समाज घर की चारदीवारी में कैद स्त्री की आवाज और अस्मिता को सामाजिक मंच पर लाने का दावा करता है, लेकिन इन दावों में हकीकत की जमीन नाममात्र है।

1900 के बाद हिन्दी प्रदेश का नवजागरण अधिक स्थिर हो चुका था। और समाज सुधार की भावना ज्यादा सुपरिभाषित रूप से सामने आने लगी थी। आधुनिक शिक्षित मध्यवर्ग हिन्दी साहित्य की रंगभूमि पर दिखाई देने लगा था। इस समय ज्ञान–विज्ञान का भरपूर प्रचार हुआ विवेकवाद और तर्कवाद की प्रतिष्ठा हुई। आधुनिकता और मध्यकालीनता के बीच बड़ी टक्कर हुई। जीवन दृष्टि और भाषा साहित्य के स्तर पर आधुनिकता की प्रतिष्ठा इस

का स्त्री की स्थिति पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इस समय तक 1875 में स्थापित आर्य समाज एक आन्दोलन बन गया था और हिन्दी भाषा में इसने अपना विस्तार कर लिया था। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और विधवा विवाह समर्थन के लिए आर्य समाज ने अत्यधिक वैचारिक और सामाजिक समर्थन दिया। अतः स्त्रियों के प्रश्न अब सिर्फ कविताओं के अन्दर सुधार की शुभच्छा व्यक्त करने तक सीमित नही थे। अब समाज क बीचों बीच सुधार का एक सक्रिय कार्यकम चलना आरम्भ हो गया था।

1920 के आस–पास अनेक अपेक्षिताओं एंव परित्यक्ताओं की ओर कवियों का ध्यान गया। यह वही समय है जब रवीन्द्रनाथ ने लिखा था– ''लक्ष्मण ने राम के लिए सब तरह के आत्मसर्पमण किये, वह गौरव गाथा भारतवर्ष के घर–घर में आज भी घोषित हो रही है, लेकिन सीता के लिए उर्मिला का आत्मोसर्ग न तो संसार में कोई जानता है, न काव्य में।[4] 'सरस्वती' पत्रिका इन स्त्रियों तक आत्मबल की महिमा इस कदर समझती हैं कि यह देश उन्नति के शिखर पर विराजमान हो तो आश्चर्य क्या है।'' एक अन्य जगह पर द्विवेदी जी भारतीय स्त्रियों के राजनैतिक व सामाजिक अधिकारों की वकालत करते हुए कहते हैं– ''आजकल भारत–वर्ष की स्त्रियों को इस बात की चिन्ता हुई है कि हमारे देश में स्त्रियों वकालत नही कर सकती, यद्यपि कही महिलाएं ऐसी हैं, जिन्होने कानून की परीक्षा पास की है।''[5]

डा0 नावर सिंह के अनुसार '' छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य में नारी सम्बन्धी रचनाएं न हो ऐसा तो नहीं है किन्तु वो रचनाएं पुरूष प्रधानता की ही द्योतक है।..... द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ वंदिनी भी बना दिया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई।[6]

इस तरह से जयशंकर प्रसाद प्रमुख स्त्रीवादी चिंतक माने गए और उन्होंने स्त्रीवादी चिंतन से ओत–प्रोत साहित्य की रचना की। कामायनी में श्रद्धा आद्य बिम्ब स्त्री है और दुसरी इड़ा बुद्धिवादी आधुनिक स्त्री है। कामायनी में श्रद्धा का महिमामंडन प्रसाद के स्त्री विषयक चिन्तन के अन्तर्विरोध की ओर स्पष्ट संकेत करता है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास जगत के नभ पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।।''[7]

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि 20 वीं सदी के दूसरे, तीसरे दशक में इड़ा जैसी स्त्री की छवि भी अस्तित्व में आ गई थी। यह छवि कामायनी में ही नही, प्रेमचन्द रचित गोदान में भी मिलती है, जिस तरह गोदान में प्रेमचन्द और उनके प्रवक्ता मेहता साहब मालती को आसानी से स्वीकार नही कर पाते। जिस तरह कामायानी में श्रद्धा का गुणगान है, उसी तरह गोदान में अत्याचारों को सहन करने वाली पतिव्रता स्त्री के आदर्श रूप में गोविंदी का महिमा मंडन है अर्थात् इस समय तक एक नवोदित शिक्षित, आधुनिक स्त्री की स्थिति संदिग्ध ही बनी हुई थी जबकि गार्हस्थिकता और ममता की देवी के रूप में परम्परागत स्त्री छवियों को बड़े जोर–शोर से प्रतिष्ठित किया जा रहा था।

छायावादी एंव विद्रोही कहे जाने वाले निराला भी स्त्री छवि के बारे में एकमत दिखाई नही पड़ते। उन्हें भी संशयात्मकता स्थिति में देखा जा सकता है जहाँ एक ओर 'वह तोड़ती पत्थर' में एक संघर्षशील स्त्री को मानवीय गरिमा प्रदान की, वही दूसरी ओर हमारी महिलाओं की प्रगति' में ये विचार प्रकट किए– 'गृह के बाहर विशाल संसार में चलने– फिरने की शक्ति, उनके

भीतर नहीं है। यदि भीतर से मनुष्य अशक्त रहा हो तो बाहर सफल नही हो सकता। भीतर के सम्पूर्ण अधिकार स्त्रियों के हैं। घर का भीतरी हिस्सा देखने में छोटा होने पर भी, बाहरी हिस्से में कम नही। बल्कि गृह धर्म के विचार के विचार से बढकर है।''[8] निराला के समकालीन गद्यकार और पत्रकार शिवपूजन सिंह सहाय ने अपने उपन्यास 'दहाती दुनिया' व कहानियों के माध्यम से स्त्री जीवन की असंगतियों और दुर्दशाओं का उल्लेख किया है। ''सच पूछिये तो इस तिलक दहेज के जमाने में लड़की पैदा करना ही बड़ी भारी मूर्खता है। लेकिन युग धर्म की दवा है। इस युग में अबला ही प्रबला हो रही है। पुरूष दिल को स्त्रीत्व खदेड़े जा रहा है।''[9]

इस सब के बीच कुछ नारियाँ भी ऐसी थी जिन्होंने नारी जागरण की लौ को बुझने नहीं दिया। इस समय महादेवी वर्मा नारी लेखिकाओं में प्रमुख थी। महादेवी वर्मा भारतीय नारी के पैरों में बेड़ियों की कटुता पीड़ा और भावनाओं को समझ चुकी थी। वे इस बात पर जोर देती ह कि स्त्री को स्वतंत्र होने और अपनी शक्ति को जानने के लिए पुरूष विरोधी या मातृव विरोधी होने की आवश्यकता नहीं। वे लिखती है– 'अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकार भी होना चाहिए सामान्यतः भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव है। कहीं उसमें साधारण दयनीयता और कहीं साधारण है उसकी क्षमता, परन्तु सन्तुलन से उसका परिचय नही है।''[10] शिवरानी देवी भी इस समय की प्रमुख हस्ताक्षर रही है। स्त्री विषयक चिन्तन की प्रमुख पुरोधा शिवरानी देवी की शैली में आकमकता का पुट है। 'भावना और बौद्धिकता का संतुलित तालमेल शिवरानी देवी की कहानियों में मास अपील पैदा करता है। उनकी अपनी स्वभावगत धीरता, जुझारू वृत्ति और दृष्टिगत उदारता किसी भी पूर्वाग्रह या दुराग्रह में कैद नही होती वरन् तर्क–वितर्क के जरिए स्थितियों की पड़ताल करती शिवरानी देवी आज के स्त्री विमर्श की जननी प्रतीत है।''[11]

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

सुभद्रा कुमारी चौहान भी स्त्री विषयक चिन्तन की प्रमुख नारीवादी विश्लेषक रही है। उन्होने झांसी की रानी नामक कविता के माध्यम से अपने युग की नारी में, एक नये जोश का समावेश किया जिससे प्रेरित हो नारिया भी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने लगी।

तब स्वीकार किया जाने लगा कि स्त्रियों की प्रत्यक्ष भागीदारी के बिना स्वतंत्रता नसीब नही हो सकती जब असहयोग आन्दोलन शुरू किया गया तो 'स्वाधीनता संग्राम' के सारे मोर्चो पर नारी शक्ति ने अपना प्रदर्शन किया। इस प्रसंग में नहेरू जी ने कहा – ''हम पुरूष लोग प्रायः सब जेल में थे। उस समय एक विचित्र बात हुई। हमारी महिलाएं मैदान में आई और उन्होंने लड़ाई का काम अपने ऊपर ले लिया। स्त्रियाँ या तो बराबर साथ थी, पर ऐसा करके उन्होने न केवल अंग्रेजी सरकार को बल्कि अपने पुरूषों को भी अचरज में डाल दिया''[12] ''भारत में 1947 तक समाज सुधार की बागडोर मुख्य रूप से गाँधी जी के हाथों में रही। वे स्त्रियों की पूरी स्वतंत्रता देने के पक्ष में थे। गाँधी जी कहना था कि स्त्री को अबला कहना अपमानजनक है, गाँधी जी ने पर्दा प्रथा का विरोध किया क्योंकि वे मानने को तैयार नहीं थे कि किसी निजी प्रकार की चारित्रिक पवित्रता बनती थी। इसक विपरीत स्त्रियों का व्यक्तित्व इससे विकसित नही हो पाता था।[13]

महिलाओं ने महिला संगठनो के निर्माण की प्रकिया शुरू की। प्रारम्भ में इन महिला संगठनों का स्वरूप स्थानीय और प्रान्तीय था। 1910 के बाद ही ये महिला संस्थाएं राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर पाई। 'सरला देवी चौधरानी' ने बाध्य देकर 1910 में 'भारत स्त्री महामण्डल की स्थापना की। इस दौर में 'नेशनल कांउसिल ऑफ वुमैन इन इंडिया' (1925) बाम्बे प्रेसीडेन्सी वुमैन्स काउंसिल (1918), अखिल भारतीय महिला परिषद् (1927) का गठन हुआ। इन संस्थओं ने शिक्षा, स्त्री मताधिकार, सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति जैसे प्रचलित

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

मुद्दों को तो लिया ही, साथ ही गाँधी जी के सत्याग्रहों में भाग लेकर राजनीतिक चेतना का परिचय दिया और हिन्दु कोड बिल, जन्म नियंत्रक उपायों व परिवार नियोजन का समर्थन करके आधुनिक दृष्टिकोण को भी व्यक्त किया।'

''फलतः 1931 में सर्वप्रथम बड़ौदा राज्य ने डाइवोर्स एक्ट पास करते हुए नारी को तलाक अधिकार दिया, 1937 में स्त्रियों को तलाक अधिकार दिया 1937 में स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्णाधिकार घोषित कर दिया। स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करते हुए 1949 में भारतीय संविधान द्वारा आधारभूत अधिकारों की रूपरेखा भी बनाई गई और सम्मिलित किया गया। जैसे संविधान की धारा 352 के अनुसार धर्म, जाति, लिंग भेद के आधार पर किसी भी विशेष मतदाता सूचो में रखा जाएगा।''[14] संविधान की राजनैतिक समानता विषयक सिद्धांत का उल्लेख स्त्री संगठनों के अथक प्रयास का ही फल है।

स्वतंत्रता के पश्चात 1948 में हिन्दु कोड़ बिल का अन्तिम प्रारूप बनाने का कार्य अम्बेडकर समिति को सौंपा गया जिसके 17 सदस्यों में से तीन महिला सदस्याएं रेणका राय, 'दुर्गा बाई' व 'आम्मु स्वामी नायन' थी। आश्चर्य है कि स्वय तत्कालीन राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, गृहमंत्री वल्लभ भाई पटेल इसके विरूद्ध थे क्योंकि उनके सामने पुरूष का आश्रय लेकर चलने वाली नारी की तस्वीर थी ओर इस वे स्वतंत्र, स्वावलम्बी तथा पुरूष की सहचरी के रूप में उभरने वाली नारी की तस्वीर को भारतीय मानने को तैयार नही थे। किन्तु इन विरोधों के बावजूद भी अखिल भारतीय महिला परिषद 'हिन्दु कोड बिल' का समर्थन करती रही। अन्ततः प्रधानमंत्री नहेरू के सहयोग से 1954–56 में इसे पांच भागों (विवाह, तलाक, पैतृक सम्पति का अधिकार व संरक्षण) में बांटकर पास किया गया।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

महिलाओं को राजनैतिक अधिकार दिए जाने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकारी व गैर सरकारी एजेंसियों ने भी लिंग समानता और महिलाओं की स्थिति में सुधार पर बल देकर नारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। अनेक पत्रिकाओं में अपने विचारों का आदान–प्रदान महिलाओं ने करना आरम्भ किया, जिनमें से सहेली, मैथीनी, आवा प्रमुख पत्रिकांए थी। सारांश में आज नारी अपने अधिकारों कर्तव्यों के प्रति सचेत होकर हर क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही है। वास्तव में 19वीं – 20वीं शताब्दी में नारी विषयक बदलते दृष्टिकोण के कारण ही इस काल को महिला जागरण युग कहा जाता है।

अन्नु,
शोधार्थी,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

lUnHkZ xzUFk lqph

1 डा. रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 1992, पृष्ठ संख्या – 71

2 बंगमहिला, नारी मुक्ति का संघर्ष, सम्पादक – भवदेय पांडेय

3 आ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ – 315

4 काव्य की उपेक्षिताएँ, रविन्द्रनाथ ठाकुर के निबन्ध, अनुवादक अमृतराय

5 वही

6 डा0 नावर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1988 पृष्ठ– 45

7 लालधर त्रिपाठी 'प्रवास', कामायनी पर्यावलोचन पृष्ठ संख्या – 189

8 निराला रचनावली – 6, कला और देवी, सं0– नन्द किशोर नवल, राजकमल प्रकाशन 1992, पृष्ठ – 238

9 शिवपूजन सिंह सहाय, कहानी का प्लाट, पृष्ठ संख्या – 47

10 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़िया,

11 डा0 रोहिणी अग्रवाल, स्वप्न और संकल्प

12 जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पृष्ठ – 32

13 हिन्दी नवजीन गाँधी जी साहित्यिक पत्र, 10–04–1930 महात्मा गाँधी, पृष्ठ – 377

14 कमला देवी चट्टोपाध्याय, इंडियन वूमैन्स बैटल फॉर फ्रोडम, पृष्ठ–109